Volume-08
Issue-10
October-2021

ISSN: 2349-7637 (Online)
RESEARCH HUB International Multidisciplinary Research Journal
https://rhimrj.co.in/ [Peer-Reviewed Journal]
https://doi.org/10.53573/rhimrj.2021.v08i10.003

भाव–वैविध्य का विशाल सागर सूरसागर

डा0 वन्दना शर्मा

एसोसियेट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग, मुलतानीमल मोदी कॉलेज, मोदीनगर (गाजियाबाद)–201204

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 15 October 2021

Keywords
साहित्य, संस्कृति, समाज, भाव, वैविध्यता।

***Corresponding Author**
Email: vandanasharma911969@gmail.com

ABSTRACT

सूरदास हिंदी साहित्य के विशाल कालखंड में अपना अप्रतिम स्थान रखने वाले महाकवि हैं। विशाल प्रबंध काव्य सूरसागर इनकी प्रसिद्धि का आधार है॰ सूरसागर एक ऐसा विशाल ग्रंथ है जिसमें हमें जीवन और समाज के सभी भाव–व्यापार व्यापक रूप में दिखाई देते हैं। यह ग्रंथ तत्कालीन समाज के साथ–साथ हमारे वर्तमान समाज का भी प्रतिनिधित्व करता है। प्रस्तुत शोध आलेख में इस महान और कालजयी कृति में भावों की विविधता और समृद्धि का अवलोकन और समाज के संदर्भ में उसकी व्याख्या करने का प्रयास किया गया है।

सूरदास कृत सूरसागर हिंदी साहित्य धारा के साथ–साथ विश्व साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। अपने कथ्य, शिल्प और भाव की वैविध्यता के चलते अलग–अलग विद्वानों ने इसे गीतात्मक महाकाव्य अथवा कृष्ण चरित का महाकाव्य कहा है। इसकी विषयवस्तु श्रीमद्भागवत महापुराण पर आधारित है। श्रीमद्भागवत महापुराण के आधार पर ही इस प्रबंध काव्य में भी बारह स्कंध हैं। इसके पदों में श्रीमद्भागवत महापुराण की उपजीव्यता के सीधे दर्शन होते हैं।

श्री कृष्ण चरित पर आधारित होने के कारण उनके जीवन वैविध्य का सीधा प्रभाव सूरसागर पर दिखाई पड़ता है। श्री कृष्ण एकमात्र ऐसे देवता हैं जो पूर्णता को प्राप्त होते हैं। इन्हें 64 कलाओं का स्वामी माना गया है॰ बाकी के देवता समाज में कितने भी माननीय, लोकप्रिय और आदर्श क्यों न हों पर वह पूर्ण पुरुष के रूप में मान्य नहीं हैं। ऐसे में श्री कृष्ण का अनुकारक काव्य होने के कारण सूरसागर में समस्त भावों की पूर्ण विविधता विद्यमान है। जिस तरह श्री कृष्ण का एक तरफ बाल रूप हमारे सामने आता है तो दूसरी ओर उनके विराट रूप के भी दर्शन होते हैं, एक तरफ राजनीति के कुशल ज्ञाता के रूप में वह हमारे सामने आते हैं तो दूसरी ओर योगेश्वर कृष्ण के रूप में उसी तरह सूरसागर में भी हम बाल–लीला से लेकर गोपियों के भाव, राजनीति से लेकर उद्धव के ज्ञानमार्गी स्वरूप का वर्णन देखते हैं। भावों और विषयों की इसी पूर्णता के चलते सूरसागर को 'पूर्ण भावों का महाकाव्य' कहा जाए तो अनुचित नहीं होगा।

गेय शैली में रचित लगभग सवा लाख पदों वाले सूरसागर के कुछ प्रसंगों में श्रीमद्भागवत से भी अधिक भाव–व्यापारों का वर्णन मिलता है। उदाहरण के लिए श्रीमद्भागवत में श्री राधा जी का वर्णन नहीं मिलता है परंतु सूरसागर में राधा जी प्राणरूप में विद्यमान हैं। यह दर्शाता है कि शास्त्रीय ग्रंथों को उपजीव्य बनाने के बाद भी सूरदास शास्त्रीयता में बंधकर नहीं रह जाते हैं बल्कि लोक कल्पना का अनुशीलन करते हुए लोक विश्वासों और लोक कथाओं को भी अपने संसार में शामिल करते चलते हैं।

सूरसागर में प्रथमतः जिस भाव के दर्शन होते हैं वह है उनका कृष्ण के प्रति आत्म निवेदन का भाव। हालांकि सूरदास अन्य कृष्ण भक्त कवियों की भाँति ही श्री कृष्ण को एक देवता से अधिक एक लौकिक मनुष्य के रूप में देखते हैं। निर्मला जैन इस पर टिप्पणी करती हैं कि, 'कृष्ण भक्तों के काव्य की बहुत बड़ी शक्ति यही है कि उन्होंने भगवान के अवतार रूप जिस कृष्ण को अपना काव्य–नायक बनाया वह इसी लोक के व्यक्ति हैं। उनकी बाललीला और प्रेमलीला का जो अत्यंत स्वाभाविक और चित्ताकर्षक वर्णन भागवत पुराण में मिलता है वही इन भक्तों के प्रेम मग्न होने का कारण है। उसके बावजूद प्रारंभ में सूरदास श्री कृष्ण के सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी रूप का ही वर्णन करते हैं। हरि को वह जगत के समस्त क्रियाकलापों का कारण मानते हुए विनय करते हैं–

चरन कमल बंदौ हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, आंधर कों सब कछु दरसाई।।
बहिरो सुनै, मूक पुनि बोलै, रंक चले सिर छत्र धराई।

सूरदास स्वामी करुनामय, बार–बार बंदौं तेहि पाई।।

यानी जिसकी कृपा से असंभव भी संभव हो जाए, लंगड़ा व्यक्ति भी पर्वत पर करने में समर्थ हो जाए और गूंगा वाचाल हो जाए अथवा बहरा सुनने लगे, रंक अपने सिर पर छात्र धारण करके चलने लगे ऐसे विराट स्वरूप और सर्वशक्तिमान हरि की मैं वंदना करता हूं।

इसी तरह श्रीकृष्ण जन्मोत्सव में सूरदास ने जिस तरह का चित्रण किया है वह अन्यत्र काव्य में दूर–दूर तक दिखाई नहीं देता है। वह लिखते हैं–

नंदराय के नवनिधि आई।
माथे मुकुट श्रवन मणि कुंडल पीत बसन अरु चारि भुजाई।।
बाजत बीन मृदंग शंख धुनि घसि अरगजा अंग चढाई।
दधि पीवत और चंदन छिरकत रपटि परत हैं लैत उठाई।।
अच्छत दूब लियै चढ़ बड़े द्वारन बंदनमाल बंधाई।
सूरदास सब मिले परस्पर दान देत नंद मन न अघाई।।

अर्थात श्री कृष्ण के जन्म से तो मानो नंद के घर में नव निधियां आ गई हों। वह कहते हैं कि कृष्ण के जन्म से नंद के घर पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील और खर्व आदि नौ निधियां सुशोभित हो रही हैं। कृष्ण के माथे पर मुकुट, कानों में कुंडल और नीलवर्ण तन पर पीतवस्त्र शोभायमान हो रहे हैं। ऋषि–मुनि अक्षत और दूब लिए खड़े हैं और दरवाजे पर बंदनवार सुशोभित हो रहा है। घंटा–घड़ियाल, ताल, मृदंग बज रहे हैं और केसर–कस्तूरी चंदन का अरगजा बनाकर उनके नीलवर्ण तन पर लेपित किया जा रहा है। यहां तक कि लोग दही हल्दी में खेलते–खेलते फिसल कर गिर रहे हैं, एक दूसरे को उठाकर गले से लगा रहे हैं। नंद दान देते–देते अघा नहीं रहे हैं, अपना सर्वस्व लुटा रहे हैं।

हालांकि जो आठों सिद्धियां और नौ निधियां स्वयं श्रीकृष्ण की अनुकंपा के लिए लालायित रहती हैं उपमा में उनकी श्रेष्ठता कैसे दिखाई जा सकती है। पर उसके बावजूद जिस तरह सूरदास ने नौ निधियों के आगमन को अत्यंत हर्ष का सूचक माना है वह मन मोह लेता है। प्रबुद्ध से प्रबुद्ध और आम से आम पाठक–श्रोता भी इस रस में स्वयं को सराबोर पाता है।

वात्सल्य वर्णन सूरदास की प्रसिद्धि का प्रमुख आधार रहा है। उन्होंने बाल कृष्ण के बालसुलभ व्यवहारों और मनुहारों का जैसा वर्णन किया है आगे के कवियों में उनका अनुकरण मिलता है। 'मैया मैं नहिं माखन खायो' अथवा 'किल्हकत कान्ह घुटुरुवन आवत' जैसे पदों में श्री कृष्ण की जो बाल छवि प्रस्तुत होती है वह किसी को भी अपने बालपन में पहुँचाने के लिए काफी है। इन पदों में कोई बालक भी उतनी ही रूचि लेता है, कोई माँ भी और कोई प्रौढ़ व्यक्ति भी। इन्हीं वर्णनों को देखकर आचार्य शुक्ल को यह कहना पड़ा कि अन्य कवियों की सरस उक्तियाँ सूर की जूठी सी जान पड़ती हैं।

नंद के यहां श्री कृष्ण–जन्म और उसका जितना सजीव वर्णन सूरदास ने बिना नेत्रों के कर दिया है वह आगे चलकर आलोचकों के लिए स्वयं में एक स्वतंत्र विमर्श का विषय बन गया है। अन्यत्र प्रसंगों में भी सूर्य की इसी प्रतिभा के दर्शन होते हैं चाहे वह बाल–लीला हो या फिर श्रृंगार वर्णन। आचार्य शुक्ल जहां स्पष्ट घोषणा करते हैं कि, 'वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आंखों से किया उतना किसी और कवि ने नहीं।' वहीं आचार्य द्विवेदी सूरदास की जन्म अंधता पर ही संदेह प्रकट करते हैं। 'हिंदी साहित्यः उद्भव और विकास' में वह लिखते हैं, 'सूरदास का साहित्य कभी जन्मांध व्यक्ति का लिखा साहित्य नहीं हो सकता।' इस प्रकार सूरदास की भाव–व्यंजना, भाव–वैविध्य और पद–लालित्य आज भी आलोचकों के लिए विमर्श का केंद्र बना हुआ है।

प्रेम और श्रृंगार का संयोग और वियोग पक्ष भी सूरसागर का अतुलनीय पक्ष है। प्रेम और श्रृंगार का बाह्य पक्ष तो कोई भी वर्णित कर सकने में समर्थ हो सकता है पर मन में बैठकर सूरदास जी मनुष्य के हृदयगत भावों का जिस तरह वर्णन करते हैं वह दूर दूर तक कवियों के काव्य में दिखाई नहीं देता है। होली का एक ऐसा ही प्रसंग है जिसमें सूरदास श्री कृष्ण और राधा के रीझने का वर्णन करते हैं–

खेलत हरि निकसे ब्रज–खोरी।
कटि कछनी पीतांबर बाँधे, हाथ लए भौंरा, चक, डोरी।।
मोर–मुकुट, कुंडल स्रवननि बर दसन–दमक दामिनि–छबि छोरी।
गए स्याम रबि–तनया कैं तट, अंग लसति चंदन की खोरी।।
औचक ही देखो तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिए रोरी।
नील बसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि रुलति झकझोरी।।
संग लरिकिनि चली इत आवति, दिन–थोरी, अति छबि तन–गोरी।
सूर स्याम देखत ही रीझे, नैन–नैन मिलि परी ठगोरी।।

यानी श्रीकृष्ण ब्रज की गलियों में खेल खेलने निकले हुए हैं। वह अपनी कमर पर पीताम्बर बांधे, और हाथ में भौंरा, चक और डोरी लिए गलियों में घूम रहे हैं। वह यमुना के किनारे अंग पर चंदन लगाए हुए पहुँचते हैं कि अचानक विशाल नैनों वाली राधा जी को देखकर मानो ठगे से खड़े रह जाते हैं। इसी तरह अनेक श्रृंगार के पद सूरसागर में मिल जाएंगे जो लौकिक और आध्यात्मिक दोनों स्तरों पर सौंदर्य को वर्णित करते हैं।

इसी तरह अनेक नवीन उपमाओं से गोपिकाओं का विरह वर्णन अथवा उद्धव को उलाहना देने का वर्णन भी दृष्टव्य है। 'बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजे' की भाव कल्पना अद्भुत है। जो कुंज बाकी दिनों में कृष्ण की उपस्थिति में

स्वर्ग का अनुभव कराते थे आज वहीँ ज्वाला पुंजों की भांति दिख रहे हैं। उद्धव को उलाहना देते समय भी कभी व्यापारी तो कभी ठग जैसी उपमाओं से भी वह पाठकों के मन–मस्तिष्क में अपनी गहरी पैठ जमाते हैं।

हालांकि सूरदास समेत इन भक्त कवियों पर कई तरह के आरोप भी लगे कि इन कवियों ने सौंदर्य चित्रण के अतिरिक्त और कुछ अपने काव्य में नहीं देखा। उदाहरण के लिए आचार्य शुक्ल लिखते हैं, 'भक्त कवियों के संबंध में यह कह देना आवश्यक है कि वह अपने रंग में मस्त रहने वाले जीव थे। तुलसीदास जी के समान लोक संग्रह का भाव इन में न था। समाज किधर जा रहा है, इस बात की परवा ये नहीं रखते थे, यहां तक कि अपने भगवत प्रेम की पूर्ति के लिए जिस श्रृंगारमयी लोकोत्तर छटा और आत्मोत्सर्ग की अभिव्यंजना से उन्होंने जनता को रसोन्मत्त किया, उसका लौकिक स्थूल दृष्टि रखने वाले विषय वासना पूर्ण जीवों पर कैसा प्रभाव पड़ेगा, इसकी और इन्होंने ध्यान न दिया।' पर यह उतना सही नहीं है।

सूरदास ने श्रृंगार से अलग समाज और राजनीति पर भी अपनी दृष्टि दौड़ाई है। राजनीति का जैसा स्वरूप उनके यहां मिलता है वैसा अन्य भक्त कवियों के यहां दुर्लभ है। वह राजनीति पर व्यंग्य करते हुए ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जो दूर–दूर तक मार करता हैप् सूरदास लिखते हैं–

राजनीति की रीति सुनौ हो, चरत वारि चर खेत

मैनेजर पांडेय इस पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि इससे बड़ी विडंबना और क्या होगी कि जब बादल ही खेत चर जाएँ और पोषक ही शोषक बन जाएँ। पर सूरदास की पैनी दृष्टि यहाँ भी गई है। उन्होंने सूर साहित्य को सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में रख कर देखा है। इस संदर्भ में सगुण संतों की भी तुलना वह निर्गुण संतों से करते हुए लिखते हैं, "निर्गुण संतों की तरह सगुण भक्तों की कविता में सामंती समाज और उसकी विचारधारा के विरुद्ध ललकार की भाषा में उग्र विद्रोह घोषणाएँ कम हैं, लेकिन उनकी कविता में चरित्रों का निर्माण, कथा की संरचना, यथार्थ बोध, भावबोध और जीवन मूल्य के बोध के स्तर पर सामंती व्यवस्था और विचारधारा का विरोध प्रकट हुआ है।' वह किसी भी साहित्य को सामाजिक विद्रूपताओं और समस्याओं और उसके निवारण की दृष्टि से देखने के पक्षधर हैं। कोई भी साहित्य अपने समाज, संस्कृति और राजनीति से दूर होकर नहीं रचा जा सकता है। इन सामाजिक घटकों का साहित्य पर प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी होता है।

ऐसे में सूर साहित्य में भी वह सामाजिक संरचना, समाज–विरोधी घटकों और उसके निवारण का पक्ष देखते हैं। आगे वह लिखते हैं, 'सूर और तुलसी ने कृष्ण और राम की जिन कथाओं को आधार बना कर काव्य रचना की, वे संस्कृत काव्य की उदात्त परम्परा की उपज और लोकजीवन में प्रचलित कथाओं के नायक अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करने वाले वीर पुरुष हैं। सामंती समाज–व्यवस्था के अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करने वाली जनता इन कथा–नायकों के संघर्ष में अपने संघर्ष की आकांक्षा का मूर्त रूप देखती है। यही इन कथाओं की व्यापक लोकप्रियता का रहस्य है। सूर और तुलसी के कृष्ण और राम अन्यायी, अत्याचारी और दमनकारी शासकों को मारकर उनकी दमनकारी सत्ताओं के स्थान पर लोकहितकारी राज्य–व्यवस्था की स्थापना करते हैं।"

इस प्रकार सूरसागर में भाव–व्यापार की समृद्धि इसे एक कालजयी रचना के रूप में स्थापित करती है। आधुनिक और नए शोध बताते हैं कि क्लासिक साहित्य मनुष्य की भावनाओं और संवेदनाओं के संतुलन में अपनी विशिष्ट भूमिका निभा सकते हैं। जरूरत है ऐसे साहित्य को सामने रखकर उनका अनुशीलन, अनुकरण और उन पर शोध करने की। नई उत्पन्न होती जटिल चुनौतियों को ध्यान में रखकर सूरसागर पर भी नई प्रविधियों से शोध करने करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. जैन, निर्मला, भूमिका, सूरदास, रामचंद्र शुक्ल, वाणी प्रकाशन, 2008 से उद्धृत
2. सूरसागर सटीक, खण्ड–1, संपादन एवं अनुवाद हरदेव बाहरी, राजेन्द्र कुमार, सं. 2010, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.–2
3. सूरसागर, टीकाकार डॉ. किशोरीलाल गुप्त, खण्ड–1, सं. 2005, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.–164
4. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, 2009, लोकभारती प्रकाशन, पृ–107
5. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, हिंदी साहित्यरू उद्भव और विकास पृ–103
6. सूरसागर, टीकाकार डॉ. किशोरीलाल गुप्त, खण्ड–1, सं. 2005, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.–180
7. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, 2009, लोकभारती प्रकाशन, पृ–108
8. पांडेय, मैनेजर, आलोचना की सामाजिकता, 2008, वाणी प्रकाशन, पृ–97
9. पांडेय, मैनेजर, भारतीय साहित्य के निर्माता सूरदास, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, भूमिका से उद्धृत
10. वही